आमने-सामने

बच्चों की सुरक्षा, हम सबकी ज़िम्मेदारी

किशोर झा

दिल्ली में पांच साल की बच्ची के साथ हुए बलात्कार की घटना के बाद पूरा देश स्तब्ध दिखाई पड़ रहा था, पर इस घटना के विरोध में उभरा गुस्सा धीरे-धीरे शांत होता दिखाई दे रहा है। दिल्ली की सड़कों पर उतरे लोग भी अपने-अपने घरों और दफ़्तरों में जा पहुंचे हैं और अख़बारों की सुर्ख़ियों में अब दूसरी ख़बरें हैं। बच्चों की सुरक्षा का सवाल एक बार फिर हाशिए पर जाता दिख रहा है।

किसी भी तरह की हिंसा से सुरक्षा हर बच्चे का मूलभूत अधिकार है पर इस घटना ने एक बार फिर से यह साबित कर दिया है कि हम अपने बच्चों को सुरक्षित रखने में नाकाम रहे हैं। इस वीभत्स मामले की बारीकियों ने मीडिया और जनता दोनों का बच्चों के साथ होने वाली हिंसा की तरफ ध्यान खींचा और लोगों की प्रतिक्रिया से ऐसा लग रहा था कि ये कोई अनोखा और इकलौता मामला हो। पर वास्तविकता यह है कि गुड़िया जैसे बहुत से बच्चे और बच्चियां हैं जो आये दिन यौन शोषण का शिकार होते हैं पर उनकी कहानियां सामने आ ही नहीं पाती। खुद *महिला एवं बाल विकास मंत्रालय* द्वारा किये गए सर्वे के अनुसार 53% बच्चों को यौन हिंसा का सामना करना पड़ता है। मासूम बच्चे यौन हिंसा के सबसे आसान शिकार हैं और अपराधी भी इस बात को भली भांति जानते हैं कि बच्चे इस हिंसा का विरोध करने में सक्षम नहीं हैं। आख़िर क्या कारण है कि तमाम क़ानूनों और व्यवस्थाओं के बावजूद हम बच्चों की हिफाज़त करने में नाकामयाब रहें हैं?

इस नाकामयाबी के लिए कई कारक ज़िम्मेवार हैं पर उन सबमें सबसे महत्वपूर्ण पुलिस का रवैया है। ऐसे मामलों में पुलिस का प्रयास रहता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज ही न की जाए। उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के कितने ही ऐसे आदेश हैं जिनमें कहा गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट बिना देर किये दर्ज की जानी चाहिए। रिपोर्ट दर्ज करने से इन्कार करना सीधा न्यायालय की अवमानना है पर ऐसे पुलिस अधिकारियों के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की जाती। अगर गुड़िया मामले को *यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण क़ानून 2012* के दायरे में आंका जाए तो हम पाएंगे कि पुलिस ने तीन दिन तक गुड़िया की गुमशुदगी की रिपोर्ट तक दर्ज नहीं की और न ही अपनी जांच-पड़ताल शुरु की। अगर पुलिस ने सही समय पर कार्रवाई की होती तो हो सकता है कि गुड़िया इस वीभत्स अपराध से बच सकती थी। यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण के तहत अवहेलना करने पर छह माह के लिए सज़ा का प्रावधान है इसलिए ऐसे सभी पुलिसकर्मियों पर उक्त धारा के अंतर्गत केस दर्ज किया जाना चाहिए जिन्होंने दुराचार की शिकायत मिलने के बावजूद तत्काल कार्रवाई नहीं की।

नेशनल क्राइम ब्यूरो के अनुसार हिन्दुस्तान में हर आठ मिनट में एक बच्चा लापता होता है। पर हम 40% बच्चों को भी ढूंढने में कामयाब नहीं होते। गैर सरकारी संगठनों द्वारा लगभग 400 ज़िलों में किये गए सर्वे के अनुसार 2008 और 2010 के बीच लगभग 1,20,000 बच्चे लापता हुए। गृह मंत्रालय द्वारा शुरु की गई 'ज़िपनेट' सेवा में लापता बच्चों की सूचना दर्ज की जाती है। पुलिस समझती है कि वेबसाइट में सूचना दर्ज करने के बाद उनका काम खत्म हो गया और बच्चे को खोजने का काम भगवान भरोसे छोड़ दिया जाता है।

बाल यौन दुराचार के मामलों में ज़रूरी है कि जांच करने वाली अधिकारी महिला हो और उन्हें पीड़ित बच्चों से पेश आने और ऐसे मामलों से निपटने के लिए प्रशिक्षित किया गया हो। पर कई मामलों में देखा गया है कि महिला जांच अधिकारी को ऐसे मामलों से निपटने के लिए कोई प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। ऐसे मामलों में यह ज़रूरी है कि जल्द से जल्द रिपोर्ट दर्ज की जाए और सारे साक्ष्य समय पर इकट्ठे किये जाएं। पर अक्सर होता यह है कि अभियुक्त साक्ष्यों के अभाव में छूट जाते हैं, और जो गवाह महत्वपूर्ण साक्ष्य हो सकते हैं पुलिस द्वारा बनाई गई गवाहों की सूची से बाहर रखे जाते हैं।

कई मामलों में पीड़ित बच्चियों और उनके परिवार को सुरक्षा की आवश्यकता होती है क्योंकि ज़मानत पर छूटने के बाद आरोपी उन्हें धमकाते हैं। यह कोई ताज्जुब की बात नहीं है कि हमेशा गवाह, पीड़ित और उनके परिवार कमज़ोर पड़ जाते हैं क्योंकि उन्हें घटना के बाद कोई सुरक्षा प्रदान नहीं की जाती। अगर क़ानून की धारा 164 के तहत पीड़ित बच्चे या बच्ची का बयान दर्ज करने में देरी हो जाती है, उसे सुरक्षा प्रदान नहीं की जाती तो केस प्रभावित होता है। पीड़ित बच्चे को इस दौरान नकारात्मक प्रभावों से नहीं बचाया जाये तो लाज़िमी है कि उसका बयान प्रभावित होगा, ख़ासकर जब अभियुक्त परिवार का ही कोई व्यक्ति हो या बच्चे पर प्रभाव डालने कि क्षमता रखता हो।

न्यायालय का माहौल भी बच्चों के लिए अपरिचित होता है जो बच्चों के बयान देने और उनके साथ होने वाली सवाल जवाब की प्रक्रिया को नकारात्मक रूप में प्रभावित करता है। इस सन्दर्भ में न्यायाधीशों और न्यायालय से जुड़े लोगों के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता है ताकि न्याय व्यवस्था को बच्चों के लिए संवेदनशील बनाया जा सके।

बाल यौन उत्पीड़न के मामलों में चिकित्सीय जांच बहुत महत्वपूर्ण है पर कारगर जांच के अभाव में ऐसे मामले कमज़ोर पड़ जाते हैं। अक्सर पीड़ित बच्चे को यह नहीं बताया जाता कि उसे किस तरह के परीक्षण के लिए ले जाया जा रहा है। बिना पर्याप्त जानकारी दिए उनसे सहमति पत्र पर हस्ताक्षर करा लिए जाते हैं। सरकारी अस्पतालों में होने वाले चिकित्सीय परीक्षणों में निजता के सभी मानदंडों को ताक पर रख दिया जाता है। कई बार पीड़ित व्यक्ति द्वारा बताई गयी बहुत सी महत्वपूर्ण सूचनाएं रिर्पोट में दर्ज ही नहीं की जाती। रिर्पोट में विधि विज्ञान जांच के लिए भेजे गए नमूनों और कपड़ों का ज़िक्र तक नहीं किया जाता।

दिल्ली में बच्चों और व्यस्कों दोनों के साथ होने वाले यौन हिंसा के मामलों में मदद के लिए संकट हस्तक्षेप केन्द्रों की व्यवस्था की गई है। पर इन केन्द्रों के पास बलात्कार के अलावा यौन हिंसा से जुड़े किसी अन्य मामलों पर कोई समझ नहीं होती। सहकर्मी भी तब आते हैं जब चिकित्सीय परीक्षण पूरा हो चुका होता है। इसलिए मामला दर्ज होने से लेकर परीक्षण होने तक पीड़ित बच्चे की मदद के लिए कोई नहीं होता।

समेकित बाल संरक्षण कार्यक्रम (आईसीपीएस) के अंतर्गत हर ज़िले में बाल सुरक्षा समितियां और हर थाने में विशेष किशोर पुलिस इकाइयों की व्यवस्था अनिवार्य है। पर देश के अधिकतर ज़िलों और थानों में या तो ये समितियां बनी ही नहीं है या उनका अस्तित्व सिर्फ़ कागज़ों तक ही सीमित है। किशोर कल्याण अधिकारी के पद के लिए अन्य अधिकारियों को अतिरिक्त भार दे दिया गया है और उनके पास बाल सुरक्षा के मामलों से निपटने के लिए समय ही नहीं है। इसी तरह इस इकाई में बच्चों की सहायता के लिए दो सामाजिक कार्यकर्ताओं की भी व्यवस्था है पर ज़्यादातर स्थानों पर वो नदारद हैं।

ज़िला स्तर पर बाल कल्याण समितियां और राज्य स्तर पर बाल सरंक्षण आयोगों की भी बच्चों की सुरक्षा सुनिश्चित करने में एक अहम् भूमिका है। पर देश के कई ज़िलों और राज्यों में ये संस्थाएं गठित ही नहीं हुई हैं। आज भी देश के चौदह राज्यों में बाल सुरक्षा आयोग और लगभग 250 ज़िलों में बाल कल्याण समितियों का गठन ही नहीं हुआ है। बहुत से ज़िलों में बाल कल्याण समितियां केवल कागज़ों पर है और ऐसे लोगों से भरी पड़ी है जिन्हें बाल अधिकारों से कोई वास्ता नहीं है।

बच्चों की सुरक्षा हम सबकी साझी ज़िम्मेदारी है। इसके लिए ज़रूरी है कि क़ानूनों का ठीक से पालन हो और क़ानून के क्रियान्वयन के तौर तरीके ऐसे हों कि पीड़ित बच्चों को और प्रताड़ना का सामना न करना पड़े। पुलिस और न्यायपालिका का रुख बच्चों के प्रति संवेदनशील हो और मामला दर्ज होने के साथ-साथ उन्हें और गवाहों को पर्याप्त सुरक्षा मुहैय्या कराई जा सके ताकि वे न्याय पाने से वंचित न हों।

जांच और न्यायिक प्रक्रिया, दोनों में ही मूलभूत सुधारों की ज़रूरत है। ऐसे ढांचागत एवं संस्थागत बदलावों की ज़रूरत है जिसमें बच्चों की देखभाल और सुरक्षा निहित हो सके। आंगनवाड़ी और स्कूलों से लेकर बाल गृहों तक बच्चों की सुरक्षा के इंतज़ाम हो और देखभाल और सुरक्षा के ये प्रावधान जे जे एक्ट के अनुसार हों। ऐसे सभी संस्थान, सरकारी या गैर सरकारी, जो बच्चों के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में काम करते हैं उनके पास बाल सुरक्षा नीति हो और उसका कारगर क्रियान्वयन हो। समाज के हर तबके और हिस्से को बाल सुरक्षा के प्रति जागरूक करने और प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है ताकि वो बच्चों की सुरक्षा के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी निभा सकें। ये भी ज़रूरी है कि बच्चों से इस विषय पर खुल कर बातचीत हो और उनका सशक्तिकरण हो ताकि वो अपनी सुरक्षा के लिए सचेत और सशक्त बनें। हाल में ही हुई घटनाओं के मद्देनज़र यह ज़रूरी है कि हम स्थिति का आंकलन करें और मिलकर इस तरह की घटनाओं को रोकने के लिए तुरंत सामूहिक कदम उठायें।

किशोर झा, *डेवलपमेंट प्रोफेशनल के रूप में टेरे डेस होम्स, जर्मनी में कार्यरत हैं और पिछले कई सालों से बाल अधिकारों के क्षेत्र में काम कर रहे हैं।*